–: शुद्धोपयोगी कौन होता है :–

सुविदिद–पदत्थ–सुत्तो,संजम–तव–संजुदो विगदरागो।
समणो सम–सुह–दुक्खो, भणिदो सुद्धोवओगो त्ति।।

जिसने जीवाजीवादि पदार्थ और उनके प्रतिपादक शास्त्र को अच्छी तरह जान लिया है, जो संयम और तप से युक्त है, जिसका राग नष्ट हो चुका है और जो सुख–दुख में समता परिणाम रखता है ऐसा श्रमण–मुनि शुद्धोपयोग का धारक गया है।

–: जिनशासन में ज्ञान :–

जेण रागा विरज्जेज्ज, जेण सेएसु रज्जदि।
जेण मिती पभावेज्ज, तं णाणं जिणसासणे।।

जिससे जीव राग से विरक्त–राग–विमुख होता है, जिससे मोक्ष–कल्याण के कार्यों में रति होती है और जिससे मैत्री भाव प्रभावित होता है– विकसित होता है, उसे जिनशासन में ज्ञान कहा है।

–: जिनशासन में आत्मा

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्ध–पुट्ठं अण्ण–मविसेसं।
अपदेस–सुत्त–मज्झं पस्सदि जिण–सासणं सव्वं।।

जो आत्मा को अबद्धस्पृष्ट (देह–कर्मातीत) अनन्य (अन्य से रहित), अविशेष (विशेष से रहित) तथा आदि–मध्य और अन्त से रहित (निर्विकल्प) देखता है, वही समग्र जिनशासन को देखता है।

–: हमारा कर्तव्य :–

णाणा–जीवा णाणा–कम्मं, णाणा–विहं हवे लद्धी।
तम्हा वयण–विवादं सग–पर–समएहिं वज्जिज्जो।।

(संसार में) नाना प्रकार के जीव है, नाना प्रकार के कर्म है और नाना प्रकार की लब्धियाँ है, इसलिए साधर्मी हो या विधर्मी, किसी से भी वचन–विवाद––विसंवाद नहीं करना चाहिए।

–: मेरा स्वरूप :–

अहमिक्को खलु सुद्धो, दंसण–णाण–मइओ सदा–रूवी।
णवि अत्थि मज्ज किंचिवि अण्णं परमाणु–मित्तं पि।।

मैं एक, शुद्ध, दर्शन–ज्ञानमय, नित्य, अरूपी हूँ। उसके अतिरिक्त अन्य परमाणुमात्र भी वस्तु मेरी नहीं है।

–: धर्म का स्वरूप :–

धम्मो वत्थु-सहावो,खमादि-भावो य दस-विहो धम्मो।
रयणत्तयं च धम्मो, जीवाणं रक्खणं धम्मो।।

वस्तु का स्वभाव धर्म है। क्षमा आदि भावों की अपेक्षा से वह दश प्रकार का है। रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यकचारित्र) तथा जीवों की रक्षा करना धर्म है।